शंकर शेष का नाट्य रंगमंच: परंपरा, प्रयोग और समकालीनता का त्रिवेणी संगम

संगीता कुमारी[1], डॉ. पूजा जोरासिया[2]
[1]शोधार्थी, कला एवं मानविकी संकाय, कैरियर प्वाइंट विश्वविद्यालय, कोटा
[2]शोध पर्यवेक्षक, कला एवं मानविकी संकाय, कैरियर प्वाइंट विश्वविद्यालय, कोटा

शोध सार : **यह शोध आलेख शंकर शेष के नाटकों के माध्यम से हिन्दी रंगमंच में परंपरा, प्रयोग और समकालीनता के समवाय को समझने का प्रयास करता है। 'रत्नगर्भा', 'चेहरा', 'बिन बाती के दीप', 'मूर्तिकार', 'खजुराहो की शिल्पी' और अन्य नाटकों में लेखक ने स्त्री अस्मिता, आत्मसंघर्ष, सत्ता और सामाजिक विषमता जैसे विषयों को गंभीरता से उठाया है। शोध में पात्र संरचना, प्रतीकों, संवाद योजना, और रंगमंचीय प्रयोगों के माध्यम से उनकी विचारधारा की गहराई को विवेचित किया गया है। शंकर शेष के पात्र आधुनिक यथार्थ से टकराते हुए भीतर की जिजीविषा, विवेक और प्रतिरोध के प्रतीक बनते हैं। समकालीन नाटककारों से उनकी तुलना करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि वे अधिक आत्मचिंतनशील और वैचारिक रंगदृष्टि के वाहक हैं। उनके नाटक संवाद मात्र नहीं, विचार का मंच हैं। लोक और परंपरा से जुड़कर भी वे सामाजिक प्रश्नों को समकालीन रूप में रखते हैं। शोध मध्यवर्गीय मानसिकता, मूल्य-संकट और सांस्कृतिक प्रतिरोध को मुख्य रूप से विश्लेषित करता है। इस प्रक्रिया में शंकर शेष एक रंगद्रष्टा के रूप में स्थापित होते हैं, जिनकी दृष्टि केवल रंगमंच नहीं, समाज की गहन पड़ताल है।**

मुख्य शब्द : **शंकर शेष, समकालीन हिंदी रंगमंच, प्रतीकात्मकता, दृश्य योजना, संवाद संरचना, रंगमंचीय प्रयोग, सामाजिक द्वंद्व, नाट्य विमर्श**

I. प्रस्तावना

हिंदी नाटक के क्षेत्र में शंकर शेष ने जो स्थान बनाया है, वह केवल रचनात्मकता की दृष्टि से नहीं, साथ में सामाजिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। उनके नाटकों में समाज के भीतर उठते सवालों की अनुगूँज है, जो रंगमंचीय प्रस्तुति के साथ-साथ संवाद और पात्रों की सोच में भी दिखाई देती है। शंकर शेष का **नाट्य लेखन परंपरा और समय के बीच सेतु का कार्य करता है**, जहाँ पुरानी संरचनाएँ पूरी तरह छोड़ी नहीं जातीं और नई दृष्टियाँ खुलकर सामने आती हैं (प्रकाश जाधव, 1988)। उनके लेखन में विचारों की गंभीरता है, पर वह बोझिल नहीं होती, और न ही वह केवल **प्रतीकों के सहारे** चलती है। सामाजिक ढांचे में जो हलचलें हैं, उन्हें उन्होंने रंगमंच पर इस तरह रचा है कि **दर्शक मात्र दर्शक न रहकर उसका हिस्सा बन जाता है** (सुनीता मंजुल बेल, 1995)। उनके नाटकों में जो टकराव है, वह केवल घटनाओं का नहीं, **सोच और व्यवस्था** का भी है, जिसे वे बहुत सहजता से मंच पर रखते हैं (नीलिमा सक्सेना, 2020)।

शंकर शेष का लेखन इस बात का प्रमाण है कि नाटककार केवल कहानी कहने वाला नहीं होता, साथ ही समाज का सजग दृष्टा और विवेचक भी होता है। उन्होंने जिन विषयों को उठाया, वे न तो परंपरा से कटे थे और न ही पूरी तरह नए थे, पर उनके प्रस्तुत करने का तरीका अलग था। यही वजह है कि उनके नाटकों में भाषा और विचार दोनों साथ चलते हैं। वे न ही केवल रंग-शिल्प पर टिके थे और न ही केवल विचारधारा पर। क्योंकि वह दोनों के बीच संतुलन बनाए रखते थे (सर्जेराव नारायणराव जाधव, 2023)। दर्शकों को झकझोर देने की उनकी शैली सरल लगती है पर भीतर से तीव्र होती है। उनकी प्रस्तुतियों में जीवन की उलझनों को समझने की सधी हुई दृष्टि मिलती है (दीपक तिवारी, 2022)। उनके पात्र कोई आदर्श छवि बनने की बजाय वास्तविक जीवन की उलझनों से भरे होते हैं, जो समाज की असली तस्वीर दर्शाते हैं (विवेक गुप्ता, 2020)।

यह अध्ययन इस बात को समझने का प्रयास है कि शंकर शेष के नाटकों में किस तरह परंपरा के साथ प्रयोग जुड़े हुए हैं, और वे किस तरह से समकालीन संदर्भों से संवाद करते हैं। उनके नाटकों में मंचीय प्रस्तुति, पात्र-विन्यास, स्त्री दृष्टि, प्रतीक और दृश्य संयोजन सब मिलकर एक नया बोध तैयार करते हैं। अध्ययन में यह देखा जाएगा कि वे नाट्य रूप को किस हद तक प्रयोगधर्मी बनाते हैं, और उसमें विचारों की गहराई किस रूप में जुड़ती है (अर्चना मिश्र, 2023)। प्रस्तुत अध्ययन केवल उनके नाटकों का विश्लेषण के साथ-साथ यह भी खोजने का प्रयास है कि उनका रचना संसार किस हद तक आज के रंगमंच को दिशा दे सकता है (हेमंत कुकरेती, 2010)। आगे के चिंतन में पात्रों की रचना, संवादों की बनावट, मंचीय प्रयोगों की समीक्षा और समकालीन नाटककारों से उनकी तुलना की जाएगी, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि उनका स्थान नाट्य साहित्य में किस स्तर पर ठहरता है (कृति संध्या, 2022)।

II. साहित्य समीक्षा

साहित्य समीक्षा का अर्थ है किसी लेखक की रचनाओं का विश्लेषण करना कि उसने क्या लिखा है, क्यों लिखा है और उसका दृष्टिकोण क्या रहा है। यह प्रक्रिया केवल विषयवस्तु को जानने तक सीमित नहीं होती, साथ में उस रचना में छिपे विचार, संवेदना और सामाजिक सरोकारों को भी उजागर करती है। समीक्षा में यह देखा जाता है कि लेखक ने किस शैली में अभिव्यक्ति दी है, उसकी भाषा कितनी प्रभावी है और समस्याओं का समाधान किस दिशा में प्रस्तुत किया गया है (किरण राठौड़, 2017)। शंकर शेष के नाटकों की समीक्षा करते समय यह जानना आवश्यक हो जाता है कि उनके पात्र, संवाद और कथानक किस विचारधारा से जुड़े

हैं। समीक्षात्मक दृष्टि यह भी स्पष्ट करती है कि उनके नाटकों में यथार्थ और प्रयोग किस रूप में एक-दूसरे से जुड़े हैं। यह विश्लेषण उनके नाटकों की आंतरिक संरचना, सामाजिक दृष्टिकोण और कलात्मक विशेषताओं को समझने की भूमिका तैयार करता है।

1.) शंकर शेष के नाटकों में समाज और यथार्थ का दृष्टिकोण

शंकर शेष ने अपने नाटकों में समाज की जटिलताओं को सीधा और साफ ढंग से रखा है। वे समाज को किसी विशेष रंग से नहीं देखते हैं। क्योंकि वह उसमें छिपी हलचल को पकड़ते हैं। पोस्टर में श्रमिक वर्ग की पीड़ा, शोषण और मौन संघर्ष प्रमुख है। यह संघर्ष केवल आर्थिक नहीं, मानसिक भी है (जाधव प्रकाश, 2012)। बाढ़ का पानी में जातिगत भेदभाव की गहराई दिखाई देती है, जहाँ संकट के समय भी ऊँच-नीच नहीं मिटती (सुनीता मंजबेले, 2015)। ये नाटक किसी नारे के सहारे चलने की बजाय अनुभव से बने हैं। पात्रों का मौन, उनका डर और सहमति, सब मिलकर समाज की सच्चाई कहते हैं (रमेश कुमार शर्मा, 2020)। शंकर शेष समाज को मंच से देखकर नहीं लिखते, वह उसमें जीकर लिखते हैं।

उनके नाटकों में जो यथार्थ है, वह केवल बाहर नहीं, भीतर का भी है। आधी रात के बाद में दो पात्रों का संवाद पूरी व्यवस्था पर सवाल खड़ा करता है। चोर का चरित्र वहाँ नैतिक दृष्टि से कहीं अधिक सजग दिखाई देता है (दर्शन पांडे, 2018)। शंकर शेष न्याय को केवल कानून की दृष्टि से नहीं देखते, वे उसमें मनुष्यता भी जोड़ते हैं (जाधव एस.एन., 2014)। उनका यथार्थ कठोर है, लेकिन उसके भीतर करुणा भी है। पात्र गलतियाँ करते हैं, पर समझते भी हैं। यही उन्हें जीवंत बनाता है। यह यथार्थ किसी एक वर्ग तक सीमित नहीं, पूरे समाज को घेरे हुए है।

तिल का ताड़ जैसे नाटकों में समाज के दिखावे और झूठ का चित्रण किया गया है। यहाँ घटनाएँ छोटी हैं, पर उनका असर बड़ा है (अनुपमा धनंजय, 2009)। मुख्य पात्र झूठ बोलता है, लेकिन यह झूठ समाज की उस सोच को दिखाता है, जो दिखावे के सहारे ही सब तय करता है। संवाद सीधे होते हैं, पर उनमें छिपा ताना गहरा होता है। शंकर शेष यह नहीं बताते कि समाज कैसा होना चाहिए, इसकी बजाय वे दिखाते हैं कि समाज कैसा है (सहस्रबुद्धे बसुंधा, 2010)। यही कारण है कि उनके नाटक आज भी पढ़े और समझे जाते हैं — क्योंकि वे केवल रंगमंच पर नहीं, मन के भीतर उतरते हैं।

2.) उनके नाटकों की पात्र योजना, प्रतीकात्मकता और संवाद विन्यास

शंकर शेष के नाटकों में पात्र घटनाओं के मोहरे होने की बजाय विचार और संवेदना के संवाहक होते हैं। वे सामाजिक व्यवस्था से सीधे टकराते नहीं, पर उनके भीतर उपजा मौन विरोध सबसे गहरी अभिव्यक्ति बनता है। रत्नगर्भा का पात्र 'इला' इस मौन की प्रतिनिधि है, जो प्रेम में समर्पण करती है, पर जब वह समर्पण उपेक्षा और पीड़ा में बदलता है, तब वह चेतना में परिवर्तित हो जाता है। संवादों की भाषा अत्यंत सरल है, पर वह अपने भीतर संघर्ष की तीव्रता को समेटे होती है। इला के संवादों से शोषण की लंबी परंपरा झाँकती है, जिसमें वह कहती है —

"मैंने तो जीवन भर दिया है…
अब क्या मेरा कुछ भी नहीं?"
(रामबली सिंह, 2008)।

यह संवाद स्त्री की उस स्थिति को उद्घाटित करता है, जहाँ प्रेम, पीड़ा और प्रतिरोध एक साथ उपस्थित हैं।

पात्रों की रचना में **मनोविज्ञान और प्रतीकात्मकता** की जो सघनता मिलती है, वह शंकर शेष को अन्य समकालीन नाट्यकारों से अलग बनाती है। **कोमल गांधार** में **गांधारी** जैसे पात्र **सामाजिक भूमिका, विवेक और आत्मबल** के बीच टकराते हैं। वह केवल राजमहल की स्त्री नहीं है, वह ऐसी सत्ता के विरुद्ध खड़ी है जो उसकी इच्छाओं को अनदेखा करती है। **गांधारी की आँखों की पट्टी उसके प्रतिरोध का वह माध्यम बनती है,** जो पूरी व्यवस्था की आँखें खोल देती है। संवादों में वह कहती है कि अंधकार केवल भौतिक नहीं होता, वह विवेकहीनता का भी प्रतीक है। ऐसे पात्र निर्णय के क्षणों में चुप रहते हैं, पर **उनकी चुप्पी ही सबसे बड़ा संवाद बन जाती है** (रेणुका राठी, 2022)। यह संरचना रंगमंच को प्रतीकात्मकता से समृद्ध करती है।

शंकर शेष प्रतीकों के सहारे सामाजिक संरचनाओं को चुनौती देते हैं। **अरे! मायावी सरोवर** नाटक में जब राजा स्त्री में बदलता है, तो उसके साथ सामाजिक दृष्टि भी बदलती है। अब वह वही शरीर लिए है, पर उसका अधिकार, उसकी सत्ता उससे छीन ली जाती है। इस नाटक में **"स्त्री बनते ही मेरी सत्ता समाप्त कर दी गई…"** यह संवाद सत्ता, देह और पहचान की त्रासदी को उघाड़ता है। यह कथन एक दृश्य से आगे बढ़कर समाज के गहरे अंतर्विरोध को सामने लाता है। **पात्र केवल दृश्य भाषा नहीं बोलते, वे अपने अनुभवों के ज़रिए व्यवस्था को प्रश्नांकित करते हैं।** संवादों में जो व्यंग्य और संक्षिप्तता है, वह सीधे कथ्य को बल देता है (मीना टंडन, 2005)। यह प्रयोग संवाद को वक्तव्य में बदल देता है।

चेहरा नाटक में पात्र स्थिर नहीं हैं, वे बदलते रहते हैं — अपने भीतर और बाहर दोनों में। हर पात्र एक सामाजिक अपेक्षा को पूरा करने के प्रयास में **अपने वास्तविक अस्तित्व से दूर होता जाता है।** यह द्वंद्व उनके संवादों और मुख-मुद्राओं में गहराता है। नाटक में एक संवाद है —

"तुम जो हो, वो दिखते नहीं,
और जो दिखते हो, वो तुम नहीं हो"
(प्रदीप सक्सेना, 2010)।

यह कथन पात्र-योजना की पूरी जटिलता को एक पंक्ति में सामने रख देता है। संवादों की शक्ति इस बात में है कि वे मुखर नहीं होकर भी दर्शक के भीतर प्रश्नों की लहरें पैदा करते हैं। पात्रों के **'चेहरे'** केवल दृश्य नहीं, वैचारिक मुखौटे हैं, जिनके पीछे छिपी बेचैनी ही इस नाटक का केंद्रीय कथ्य बनती है।

3.) रंगमंचीय प्रयोगों, शिल्प और प्रस्तुति की विश्लेषणात्मक समीक्षा

डॉ. शंकर शेष के नाटकों में दृश्य विन्यास केवल रंग-सज्जा या मंचबंदी का प्रयोग न होकर विचार और संवेदना का दृश्य अनुवाद है। कालजयी नाटक में मंच पर राजा की ऊँचाई और जनता की निम्नता को दिखाना दृश्यतः सत्ता की असंतुलित संरचना को दर्शाता है (रामकांत गावड़े, 2005)। नाटक के अंत में दासी रेखा का मंच के मध्य भाग में खड़े होकर मौन में राजा को देखना और उसके गिरने का दृश्य, प्रकाश और नीरवता के माध्यम से क्रांति की प्रतीकात्मक रचना करता है (बलीराम मुथरे, 2010)। जब रेखा कहती है —

"राजा का शरीर तो बड़ा था...
लेकिन उसकी आत्मा मेरी आँखों के आँसू से भी छोटी निकली।"

तो यह कथन केवल संवाद नहीं, दृश्य की आत्मा बन जाता है। मंच पर संगीत नहीं, मौन की उपस्थितियाँ दृश्य को और तीव्र बनाती हैं।

फंदी में दृश्य संरचना भावनात्मक स्थिति का विस्तार बनकर उभरती है, जहाँ मंच पर वस्त्र, प्रकाश और गति सभी न्यून होते हुए भी प्रभाव तीव्र है। जब फंदी अदालत में खड़ा होता है, तो उसके पीछे की दीवार की छाया, धीमी रोशनी और **धीमे संवाद** दृश्य को केवल कान से नहीं, अंतर्मन से सुनने योग्य बनाते हैं (प्रकाश नारायणराव, 2009)। कोर्ट का दृश्य यथार्थ पर आधारित होते हुए भी फंदी के मानसिक द्वंद्व को दृश्य भाषा में रूपांतरित करता है। उसका यह कथन —

"मैंने अपने पिता की आँखों में मौत की भीख माँगते देखा..."

इस दृश्य को अत्यंत करुण बनाता है (रेखा शुक्ला, 2020)। मंच पर किसी बड़े सेट या रंगीनता की जगह **'मौन की छाया'** ही दृश्य सौंदर्य बन जाती है।

नई सभ्यता: नए नमूने में दृश्य और प्रतीक का संबंध सबसे तीव्र रूप में सामने आता है। कृष्ण कन्हैया जब रंगीन वस्त्रों में प्रवेश करता है और दोनों बहनों के साथ चालाकीपूर्वक मंच पर गतिशील रहता है, तो मंच उसकी अस्थिर नीतियों का प्रतिबिंब बन जाता है (मृणाल नवटे, 2015)। नाटक में संवादों के साथ मंच की हलचल, पात्रों की स्थिति और प्रकाश संयोजन मिलकर यह संकेत देते हैं कि 'सभ्यता' अब केवल दिखावे की रंगोली है (सुनीता मंजनेकर, 2015)। पात्रों के वेश, मंच की चंचलता, और चरित्रों की तेज आवाज़ — सभी दृश्य संरचना को विडंबना का माध्यम बनाते हैं। कृष्ण के झूठे हावभाव और उसके मंचीय अतिरेक से दर्शकों को आधुनिक छल की पहचान कराई जाती है।

एक और द्रोणाचार्य नाटक की दृश्यात्मक योजना आधुनिक शिक्षा तंत्र की सड़ांध को मंच पर दृश्य में बदलती है। स्टाफ रूम, प्रेसिडेंट का ऑफिस, और कक्षा — ये सभी स्थलों का मंचीय प्रयोग केवल भौगोलिक नहीं, नैतिक संक्रमण का प्रतीक है (जसवंत पंड्या, 2006)। विमलेंदु जब बार-बार मंच के कोने में छाया की तरह आता है, तो वह अरविंद की चेतना का दृश्य रूप बन जाता है (विभा राठौर, 2022)। मंच पर राजकुमार और प्रेसिडेंट की तेज़ आवाज़ें और अनुराधा की चुप्पी दृश्य में नैतिक असंतुलन का निर्माण करती हैं। मंच की रचना यहाँ किसी नाटकीयता के बजाय आंतरिक विघटन की दृश्य प्रक्रिया बनती है — जिससे दर्शक पात्रों के भीतर के संकोच, समझौते और सत्ता के विरुद्ध निःशब्द प्रतिरोध को पहचानता है।

उनके नाटकों में परंपरा और लोकतत्त्वों का समन्वय

शंकर शेष के नाटकों में परंपरा कोई मृत ढाँचा न होकर वह जीवन में धड़कती हुई सांस्कृतिक धारा है। उनकी रचनाओं में यह धारा हमेशा बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य के साथ बहती है। 'खजुराहो की शिल्पी' में राजा और पुरोहित परंपरागत सत्ता के प्रतिनिधि बनते हैं, जबकि शिल्पी लोक की संवेदना का प्रतीक होता है। लेखक ने परंपरा को शिल्प, संवाद और दृश्य के स्तर पर फिर से गढ़ा है। नाटक केवल ऐतिहासिक स्मृति नहीं, वर्तमान का पुनर्पाठ बन जाते हैं (कमल शर्मा, 2013)। मंच पर जो स्वरूप उभरता है, वह न परंपरा का अंधानुकरण है, न ही उसका नकार। शंकर शेष ने इन दोनों के बीच संवाद की जगह बनाई है। लोकसंस्कृति उनके लिए अनौपचारिक परंपरा है, जिसमें समाज की असली नब्ज़ छिपी है। यह लोक अपनी भाषा, अपने प्रतीक और अनुभवों के सहारे नाटक में प्रवेश करता है। परंपरा यहाँ मार्गदर्शक है, कोई बंधन नहीं (सविता जोशी, 2014)।

लोकतत्त्वों की उपस्थिति उनके नाटकों में केवल पात्रों की भाषा या वेशभूषा तक सीमित नहीं है। यह लोक उस आम आदमी की सोच में झलकता है, जो मंच पर बोल नहीं रहा, पर मौजूद रहता है। 'बेटों वाला बाप' में पिता का पात्र एक जनप्रतिनिधि की तरह खड़ा होता है। वह परिवार के भीतर रहकर भी समाज की बड़ी तस्वीर सामने रखता है। बेटे अपने रास्तों पर जाते हैं, लेकिन पिता का संघर्ष उन्हें जोड़ता रहता है। यहाँ परंपरा सवालों को रोकती नहीं, उन्हें सामने लाती है (विनोद तिवारी, 2014)। संवादों में मुहावरे, कहावतें और बोलचाल की लय है, जो उन्हें जनता के करीब ले जाती है। शंकर शेष का रंगमंच बुद्धिजीवी रंगमंच नहीं है, वह जनमानस का रंगमंच है। वही रंगमंच जो दर्शकों को दर्शक नहीं रहने देता, सोचने पर मजबूर करता है (रामनारायण शर्मा, 2019)। यहीं लोकतत्त्व जीवित हो उठते हैं।

'बंधन अपने-अपने' में परंपरा निजी संबंधों की जमीन पर आती है, जहाँ प्रेम और कर्तव्य की लड़ाई होती है। चेतना और अनादि की उलझन में वह मानसिक तनाव झलकता है जो हर पीढ़ी को उलझाता रहा है। संवाद छोटे हैं, भाव गहरे हैं। नाटक में परंपरा परिवार का अनुशासन नहीं, आत्मा का निर्णय बन जाती है। पात्र तर्कशील इन बंधनों को तटस्थ दृष्टि से देखता है, लेकिन दर्शक खुद को उनमें उलझा पाता है (नारायणराव प्रकाश, 2009)। यह परंपरा स्त्री के भीतर की छटपटाहट भी बन जाती है, जिसे चेतना अपने शब्दों में कहती है —

"मैं रिश्तों में प्रेम चाहती हूँ,
सौदे नहीं।"

यह एक स्त्री की नहीं, पूरी संस्कृति की पुकार है। शंकर शेष यहाँ परंपरा की नई परिभाषा गढ़ते हैं — ऐसी परंपरा जो प्रेम में है, लेकिन निर्णय में भी।

शंकर शेष के रंगमंच में परंपरा और लोक दिखावे की बजाय सोच की दिशा है। उनका मंच चकाचौंध से दूर, अनुभवों से जुड़ा होता है। 'बिन बाती का दीप' में विशाखा का पात्र किसी पुरानी पीड़ा की छाया नहीं, एक जागरूक भाव है। अंधकार में जीती वह स्त्री केवल सहन नहीं करती, देखती भी है। शिवराज जैसे पात्रों में वह पुरुष दिखता है जो प्रेम में छिपा है, लेकिन सच से डरा हुआ है (प्रज्ञा सिंह, 2012)। परंपरा यहाँ नेत्रहीनता का प्रतीक नहीं, अनुभूति का प्रतीक बनती है। शंकर शेष हर पात्र को ऐसा बना देते हैं जो किसी विचारधारा का पोस्टर नहीं, भीतर का सच हो। इसलिए उनके नाटक केवल मंच पर नहीं टिकते, वे जीवन की निरंतरता में उतरते हैं (इला सक्सेना, 2009)। और इसी में परंपरा और लोक की वह गूंज है जो समय के पार सुनाई देती है।

प्रतीकात्मकता, दृश्य योजना और रंगमंचीय तकनीक

शंकर शेष के रंगमंच में दृश्य, प्रतीक और पात्रों की गतिशीलता एक साझा बिंब रचती है, जिसमें प्रत्येक क्रिया सामाजिक अर्थवत्ता से भरी होती है। पोस्टर नाटक में मंच पर बार-बार बदलते मुखौटे, मजदूरों की पंक्तिबद्ध खामोशी, और भाषणों की बेतुकापन, एक ऐसा दृश्य रचते हैं जो सत्ता के रूप बदलते चेहरे दिखाता है। यहाँ मंच के केंद्र में स्थित पोस्टर स्वयं एक प्रतीक बन जाता है — उस व्यवस्था का जो मेहनत किसी और की दिखाती है और चेहरा किसी और का चमकाती है। पात्रों का संवाद —

"हम तो काम करते हैं और
पोस्टर में कोई और होता है"

— इस दृश्य को प्रतिरोध का स्वर दे देता है (गणेश नारायण देवल, 1995)। दृश्य योजना में प्रकाश का तेजी से मंद पड़ना और संवादों के बाद मौन, क्रिया से अधिक भाव पैदा करता है (सुबोध चक्रवर्ती, 2001)। यहाँ प्रतीकों का उपयोग यांत्रिक होने की बजाय जीवित सामाजिक अनुभव से जुड़ा हुआ है, जो केवल कथ्य का पूरक नहीं, कथ्य की आत्मा बनता है (राजेश निगम, 2012)।

बाढ़ का पानी नाटक में प्रतीकों का सबसे सधा हुआ और तीव्र उपयोग देखा जा सकता है, जहाँ 'बाढ़' प्राकृतिक त्रासदी के साथ-साथ जातिगत दंभ और सामाजिक

अनुदारता का उद्घाटन करती है। मंच पर कहीं पानी का प्रवाह नहीं दिखाया गया, पर पात्रों की सजीवता, उनके कपड़ों की गीलापन, उनकी थरथराहट और सूने मंदिर-दरवाजे — यह सब दृश्य सौंदर्य की बजाय सामाजिक कटाक्ष का कार्य करते हैं।

''बाढ़ से नहीं, तुम्हारी सोच से
डूब जाएंगे हम''

— यह संवाद दृश्य रचना को गहराई प्रदान करता है (अनुपमा धनंजय, 2009)। जब पात्र मंच के किनारे ठिठके खड़े रहते हैं और मंदिरों के द्वार बंद दिखाए जाते हैं, तो सामाजिक बहिष्कार को बिना कहे दर्शाया जाता है (रामकुमार सरोजी, 2011)। यहाँ दृश्य तत्वों में कोई रंगीनता नहीं, परंतु हर छाया और मौन एक जातीय असमानता का साक्षी बनता है (मोहन कुमार बघेल, 2015)। नाटक इस दृष्टि से अद्वितीय है कि इसमें प्रकृति के माध्यम से मानवीय अमानवीयता को उकेरा गया है।

तिल का ताड़ में दृश्य योजना को हास्य और प्रतीकों के माध्यम से सामाजिक विडंबना में रूपांतरित किया गया है। प्राणनाथ का झूठ बोलना और फिर झूठ पर झूठ जोड़ते जाना केवल एक हास्यास्पद परिस्थिति न होकर उस मध्यवर्गीय मानसिकता का प्रतीक है जो सामाजिक स्वीकृति के लिए स्वयं को बदलने को विवश हो जाता है। मंच पर पात्रों की तीव्र गति, संवादों की आवृत्ति और संवादों के बीच का तनाव — यह सब 'ताड़' बनने की प्रक्रिया को दृश्यात्मक बना देता है (नवीन नन्दवाना, 2014)। ''झूठ एक दरवाज़ा है, जिसे खोलते ही कई दरवाज़े और खुलते जाते हैं'' — यह कथन हास्य की ओट में गहरी नैतिक चिंता रखता है (संतवत पाण्ड्य, 2006)। दृश्य योजना में पात्रों की स्थिति, प्रकाश की भिन्नता और दरवाज़ों का बार-बार खुलना-बंद होना दर्शक को प्रतीकों के स्तर पर संवाद में जोड़ता है (रामाश्रय वाजपेयी, 2016)। यह नाटक रंग-संकेतों की बजाय गति और स्थान परिवर्तन से दृश्य सौंदर्य रचता है।

आधी रात के बाद नाटक में दृश्य संरचना का समस्त भार संवाद और मौन पर टिका है, जहाँ मंच पर केवल दो पात्र हैं — चोर और जज — परंतु पूरा दृश्य एक सजीव वैचारिक द्वंद्व बन जाता है। यहाँ न कोई मंच सज्जा है, न कोई विशेष प्रकाश संयोजन, लेकिन हर शब्द, हर मौन, मंच पर एक दृश्य खड़ा करता है जो दर्शक के भीतर उतरता है। चोर का संवाद —

''मैं चोर हूँ क्योंकि सच बोलने वाला
आज सबसे बड़ा अपराधी है''

— इस रंग योजना को झकझोर देता है (एस.एस. शर्मा, 2007)। जब जज की कुर्सी धीरे-धीरे अंधेरे में डूबती है और चोर के चेहरे पर प्रकाश केंद्रित होता है, तो दृश्य संरचना व्यवस्था के बदलते नैतिक केन्द्र को दर्शाती है (दर्शथ ओझा, 1984)। यह नाटक प्रमाणित करता है कि दृश्य की शक्ति उसके बाह्य सज्जा में नहीं, उसकी अंतःचेतना में होती है (संजय कुमार गुप्ता, 2012)। मंच पर पात्रों की शारीरिक स्थिरता, लेकिन मानसिक उत्तेजना ही इस नाटक की रंगमंचीय विशेषता है।

स्त्री पात्रों में अस्मिता और प्रतिरोध की अभिव्यक्ति

शंकर शेष की स्त्री पात्रों में आत्माभिव्यक्ति एक सतत प्रक्रिया की तरह उभरती है, जो सामाजिक संरचनाओं से टकराकर ही स्पष्ट होती है। उनकी स्त्रियाँ नायिकाएँ न होकर संघर्षशील व्यक्तित्व हैं, जो परिस्थितियों में समाहित होने की बजाय उन्हें पुनर्परिभाषित करती हैं (शैलजा सक्सेना, 2008)। उदाहरणतः 'रत्नगर्भा' की इला एक ऐसी स्त्री है, जो अपने प्रेम और समर्पण से जब निरादृत होती है, तो वह स्वयं को एक 'दानी' नहीं, एक 'द्रष्टा' के रूप में पुनः गढ़ती है। इस पात्र के माध्यम से शंकर शेष यह संकेत करते हैं कि प्रेम जब अधिकारहीन कर दे, तो स्त्री उसे त्याग सकती है, पर स्वयं को नहीं। इला का प्रतिरोध वाचाल की बजाय उसकी असहमति की गरिमा है (निशा दुग्गल, 2016)। अंतिम दृश्य में इला का मंच से बाहर जाना, भागना नहीं है। क्योंकि दृश्य से बाहर होकर भी वह सबसे अधिक उपस्थित हो जाती है (रंजना तोमर, 2017)।

स्त्री अस्मिता के संघर्ष का दूसरा रूप मौन के भीतर स्थित होता है, जो न केवल वाणी की अनुपस्थिति है, साथ में भावनात्मक आत्मसंयम की चरम अभिव्यक्ति है (रेखा भटनागर, 2009)। 'कोमल गांधार' की गांधारी इसी मौन की प्रतिनिधि है, जो अपने निर्णय से राज्य, समाज और परिवार के अंतर्विरोधों को उद्घाटित करती है। जब वह अंधे पति के सामने अपनी आंखें स्वयं ढँक लेती है, तब वह स्त्री दृष्टि को सीमित करने की बजाय एक संकेत देती है कि वह सत्तात्मक विवेक को अस्वीकार कर रही है।

गांधारी की असहमति उस व्यवस्था से है, जिसमें स्त्री को 'कर्तव्य' मानकर उसका आत्मबलिदान तय कर दिया जाता है। इस पात्र के माध्यम से शंकर शेष प्रतिरोध के ऐसे आयाम को सामने लाते हैं, जो नारेबाजी से नहीं, निःशब्द नैतिकता से भरा हुआ है (वसुन्धरा मिश्रा, 2015)। गांधारी का मौन दृश्य को इतना तीखा बना देता है कि शब्द गौण हो जाते हैं (राजलक्ष्मी तिवारी, 2018)।

स्त्री की सामाजिक अस्मिता तब सबसे अधिक आहत होती है, जब वह अपने निर्णयों में स्वतंत्र होकर भी केवल शरीर के आधार पर मूल्यांकित की जाती है। यह द्वंद्व 'अरे! मायावी सरोवर' में अत्यंत प्रभावशाली रूप में सामने आता है। राजा जब स्त्री में बदल जाता है, तो वह महसूस करता है कि उसका वह अस्तित्व, जो कभी सत्ता और निर्णय का केन्द्र था, अब केवल देह में सिमट गया है (प्रज्ञा कुलकर्णी, 2011)। इस स्थिति में शेष बताते हैं कि लिंग परिवर्तन कोई शारीरिक अवस्था न होकर सामाजिक स्थान के मूल्यांकन का जरिया बनता है। स्त्री के रूप में राजा का यह कथन —

''मैं वही हूँ, पर अब मेरी आवाज़ और
हाथ दोनों गिने नहीं जाते।''

इस बात की ओर संकेत करता है कि अस्मिता अधिकार से नहीं, पहचान के सामाजिक स्वीकृति से जुड़ी होती है (श्रद्धा राठी, 2014)। यह दृश्य इस नाटक को प्रतीकात्मक नहीं, गहन यथार्थ से जोड़ देता है।

'चेहरा' नाटक में स्त्री पात्रों के माध्यम से सामाजिक दिखावे, असली अस्तित्व और भूमिका के बीच द्वंद्व को दर्शाया गया है। ये पात्र नकली मुखौटों की दुनिया में अपने असली चेहरे को बचाए रखने का जोखिम उठाते हैं (ज्योति गिल, 2010)। समाज जहाँ 'रूप' को प्राथमिकता देता है, वहाँ ये स्त्रियाँ 'सच' का बोझ उठाने को तैयार दिखती हैं। यह विरोध कोई शाब्दिक युद्ध नहीं है। क्योंकि अपनी स्वाभाविकता को बचाए रखने का साहसिक चयन है। जब एक पात्र कहती है —

''मैं वही हूँ जो हर बार बदल दी जाती हूँ,
बिना कुछ कहे।''

तो यह केवल भावनात्मक अस्वीकार नहीं, एक दार्शनिक चुनौती है, जो स्त्री को क्रियात्मक रूप की बजाय संज्ञान के स्तर पर स्थापित करती है (निधि उपाध्याय,

2013)। शंकर शेष की स्त्री पात्रें यही बताती हैं कि अस्मिता किसी भूमिका से नहीं, आत्म-स्वीकृति से बनती है।

मध्यवर्गीय मानसिकता, सामाजिक द्वंद्व और मूल्य संकट

शंकर शेष के नाटकों में संवाद महज कथ्य को आगे बढ़ाने का साधन न होकर वे सामाजिक चेतना और वैचारिक प्रतिरोध के वाहक बनते हैं (प्रदीप सक्सेना, 2010)। उनके नाटकों में संवाद व्यक्ति की आंतरिक स्थिति को, और साथ ही समाज से उसके अंतर्द्वंद्व को दर्शाते हैं। उदाहरणस्वरूप, 'चेहरा' में प्रत्येक संवाद किसी भूमिका को ढो रहे पात्र की गूंज प्रतीत होता है। संवादों में कोई भी पंक्ति मात्र बोल नहीं होती, वह एक सवाल, एक असहमति और कई बार एक स्वीकृति भी होती है (सुधीर जोशी, 2006)। संवादों का यह द्वंद्वात्मक स्वरूप ही शंकर शेष को परंपरागत नाट्य लेखन से भिन्न और विशिष्ट बनाता है।

'बिन बाती के दीप' में संवादों की अनुपस्थिति ही एक सशक्त वक्तव्य बन जाती है। जब शिवराज कहता है —

"जिस आंखों से वह मुझे देख नहीं सकती,
उन्हीं आंखों के भीतर मैंने खुद को छिपा लिया है",

तो यह संवाद छद्म प्रेम के नाम पर किए गए आत्मगोपन का उद्घाटन है (संजीव मंडल, 2022)। विशाखा का मौन संवादों के समांतर खड़ा होता है। यही शेष का वैशिष्ट्य है — जहाँ चुप्पी भी संवाद बन जाती है। इन चुप्पियों और संवादों के बीच स्त्री-पात्र एक नई वैचारिकता अर्जित करती हैं, जो उन्हें मात्र 'दुख भोगने वाली' से आगे एक विचारशील इकाई बनाती है (रामकान्त गावड़े, 2005)।

शेष के पात्र केवल घटनाओं से नहीं बनते, वे विचार और संघर्ष से निर्मित होते हैं। 'मूर्तिकार' का शेखर एक साधारण कलाकार नहीं, वह एक प्रतीक बनता है — आत्मसत्ता की तलाश में रचनात्मकता को थामे हुए। उसकी चुप्पियाँ, उसका असहमति में हँसना और अंततः आत्मविवेक से किया गया त्याग — संवादों की उस तह को दिखाते हैं जहाँ शब्द कम और अर्थ अधिक होता है (राजीव त्रिपाठी, 2018)। पात्रों के भीतर यह द्वंद्व उन्हें दर्शकों के लिए 'देखने' का नहीं, 'सोचने' का विषय बना देता है (राहुल जैन, 2019)।

गांधारी, ललिता, विशाखा जैसे स्त्री पात्र भी प्रतीकात्मक संवादों के माध्यम से वैचारिक नेतृत्व ग्रहण करते हैं। 'कोमल गांधार' में गांधारी कहती है —

"यदि मैं देख भी सकती,
तो भी नहीं देखती",

यह पंक्ति केवल त्याग नहीं, साथ ही सत्ता और परंपरा के प्रतिरोध का एलान है (कमला मिश्रा, 2016)। इन पात्रों की संरचना किसी पारंपरिक संरचना में न बंधकर **विचारों की भाषा में ढली प्रतीकात्मक मूर्तियाँ** हैं। शंकर शेष का रंगमंच इसी विमर्श के लिए खड़ा होता है, जहाँ संवाद, मौन और प्रतीक — तीनों एक साथ **सामाजिक चेतना को सजीव** बनाते हैं (रेणुका राठी, 2022)।

इस विमर्श की सघनता को समझने के लिए **संवाद और पात्र-संरचना के मध्य** तुलनात्मक भिन्नताओं को नीचे दी गई तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है:

संवादों और पात्र-संरचना की वैचारिक विशेषताओं की तुलनात्मक तालिका	
संवादों की भूमिका	पात्र-संरचना की प्रकृति
प्रतीकों और चुप्पियों के ज़रिये गहरे सामाजिक संकेत प्रदान करते हैं।	पात्रों की चुप्पी, मौन और असहमति — सभी सोचने की प्रक्रिया का हिस्सा बनते हैं।
संवादों में द्वंद्व, असहमति और आत्मसंघर्ष का समावेश होता है।	पात्र केवल व्यक्ति नहीं, वैचारिक भूमिका निभाने वाले जीवित प्रतीक होते हैं।
हर संवाद केवल कथ्य नहीं, साथ में एक विमर्श उत्पन्न करता है।	पात्र घटना से अधिक विचार के आधार पर गढ़े जाते हैं।
संवादों की अनुपस्थिति भी प्रतीकात्मक संवाद का रूप ले लेती है।	पात्र दर्शक को नाटकीय नहीं, बौद्धिक सहभागिता के लिए आमंत्रित करते हैं।

समकालीन नाटककारों की तुलना में शंकर शेष का अध्ययन

शंकर शंकर शेष का नाट्य दृष्टिकोण उनके समकालीन नाटककारों से इस मायने में भिन्न है कि वे पात्रों के भीतर चल रहे विचार संघर्षों को दृश्य रूप में सामने लाते हैं। जबकि मोहन राकेश, धर्मवीर भारती या लक्ष्मीनारायण लाल ने भी सामाजिक संकटों को केंद्र में रखा, पर उनकी कृतियों में पात्र कभी-कभी घटनाओं के दबाव में निष्क्रिय भी दिखते हैं। शंकर शेष के पात्र, विशेषकर 'बिन बाती के दीप' या 'कोमल गांधार' में, आत्मसंघर्ष से गुजरते हुए चेतना की ओर अग्रसर होते हैं (रमाकान्त दीक्षित, 2001)। यह चेतना केवल उनकी नहीं, साथ में सामाजिक संवाद की भी उत्पत्ति होती है, जो शेष के नाट्य शिल्प की वैचारिक गहराई को दर्शाती है (रेखा मेहता, 2010)। उनकी रंग-दृष्टि दृश्य को मनोविज्ञान और विचार से जोड़कर उसे साधारण दृश्य से विचारकेंद्रित घटना में बदल देती है।

उनकी संवाद योजना भी समकालीनों की अपेक्षा अधिक मितव्ययी, प्रतीकात्मक और मौन के प्रयोग से समृद्ध है। जहाँ मोहन राकेश के संवाद वर्णनात्मक और ऐंद्रिय हैं, वहीं शंकर शेष मौन और प्रतीक के माध्यम से नाट्य प्रभाव पैदा करते हैं (सुधीर जोशी, 2005)। उदाहरण स्वरूप, 'चेहरा' नाटक में किसी दृश्य के स्थान पर केवल मंच प्रकाश और पात्रों की स्थितियों से द्वंद्व की उपस्थिति दर्शाई जाती है। यह प्रयोग शेष को एक सृजनात्मक निर्देशक भी बनाता है, जो दृश्य और कथ्य के बीच अंतर को ध्वनि, प्रकाश, और प्रतीक से भरता है (नीलम दुबे, 2006)। यही अंतर उन्हें सामाजिक कथ्य से मनोवैज्ञानिक गहराई की ओर ले जाता है।

इस अन्तर को नीचे दी गई तालिका के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है —

शंकर शेष और समकालीन नाटककारों के बीच वैचारिक और रंगमंचीय भिन्नताएं		
विशेष पक्ष	समकालीन नाटककार (भारती, राकेश, लाल)	शंकर शेष
संवाद शैली	वर्णनात्मक और भावप्रधान।	मितव्ययी, प्रतीकात्मक और मौन के प्रयोग से संपन्न।
नाट्य संरचना	दृश्य प्रधान, क्रमिक।	मानसिक दृश्यों पर आधारित, प्रतीकात्मक संरचना।
पात्र विकास	परिस्थितियों से प्रेरित।	आत्मबोध और नैतिक संघर्ष से निर्मित।
रंग-प्रयोग	पारंपरिक रंगशैली में सीमित।	प्रकाश, ध्वनि और मंच संरचना के नवीन प्रयोग।

शंकर शेष के नाटकों में यह भी विशेष रूप से दिखाई देता है कि वे अपने पात्रों को केवल कथावाचक बनाकर छोड़ने की बजाय उनके माध्यम से व्यापक सामाजिक

विमर्श को जन्म देते हैं। उनकी नायिकाएँ — जैसे **'गांधारी', 'इला' या 'विशाखा'** — आत्म-संवाद से गुज़रती हुई अंततः सामाजिक प्रश्नों से जूझती हैं (पूनम मिश्रा, 2011)। यह द्वंद्व उन्हें सामान्य पात्रों से अलग करते हुए विचारशील प्राणी बनाता है। दूसरी ओर, **भारती की गांधारी में जो आक्रोश है, वह प्रतिक्रिया मात्र है; शेष की गांधारी में जो विवेक है, वह एक प्रस्तावना है** — स्त्री की वैचारिक उपस्थिति की। यही गहराई उन्हें स्त्री विमर्श, **मध्यवर्गीय मानसिकता और आत्मसत्ता के प्रश्नों** से जोड़ती है (शिवेन्द्र त्रिपाठी, 2020)।

प्रयोगधर्मिता के स्तर पर शंकर शेष ने समकालीनों की अपेक्षा अधिक विविधता और जोखिम उठाने का साहस दिखाया। **'अरे! मायावी सरोवर'** में उन्होंने लिंग परिवर्तन जैसे विषय को रूपक और पौराणिकता के सहारे गहराई दी, वहीं **'त्रिभुज का चौथा कोण'** में अस्तित्ववादी दर्शन को नाटकीय संरचना में गूंथ दिया (विजय नाथ, 2021)। यह विशिष्टता उन्हें उन लेखकों से अलग करती है जो सामाजिक स्थिति का चित्रण तो करते हैं, पर मंचीय तकनीक और विचार-संरचना में अपेक्षित नवीनता नहीं लाते। शंकर शेष के यहाँ दृश्य का उद्देश्य केवल दृष्टिगत न होकर वैचारिक होता है, जिससे उनका रंगमंच केवल देखने की नहीं, सोचने की प्रक्रिया बन जाता है (रजनीश खरे, 2022)।

III. निष्कर्ष और सुझाव

शंकर शेष का नाट्यलेखन समकालीन हिंदी रंगमंच में एक **गंभीर और विवेकशील** हस्तक्षेप के रूप में देखा जाता है, जहाँ पात्र अपने **आंतरिक द्वंद्व और सामाजिक संरचनाओं** के बीच गहरे संवाद रचते हैं। उनकी रचनाओं में **विचार, प्रतीक और मंचीय प्रयोग** न केवल **कलात्मक अभिव्यक्ति** हैं, साथ में **सामाजिक यथार्थ की परतें खोलने के औज़ार** भी बनते हैं। वे अपने नाटकों में स्त्री अस्मिता के साथ-साथ कलाकार की आत्मसत्ता, वर्ग संघर्ष, और सामाजिक विडंबनाओं को लेकर भी एक परिपक्व दृष्टिकोण अपनाते हैं। **'मूर्तिकार', 'बिन बाती का दीप', और 'चेहरा'** जैसे नाटकों में मंच केवल अभिनय का क्षेत्र न होकर विचारों के प्रस्फुटन की भूमि बन जाता है। **पात्रों की चुप्पी, प्रतीकों की व्यंजनाएँ और दृश्य संयोजन** — इन सबके भीतर जो विवेक उभरता है, वह उन्हें समकालीनों से भिन्न और अधिक सशक्त बनाता है। समकालीन नाटककारों के बीच उनकी उपस्थिति एक ऐसे रचनाकार की है, यथार्थ प्रस्तुत करने और कल्पना रचने के साथ-साथ दोनों के बीच मानवीय गहराई की खोज करते है।

शंकर शेष के रंगमंचीय योगदान को केवल पठन तक सीमित करना उनकी विचार-सम्पदा के साथ अन्याय होगा; **उनके नाटकों का पुनर्पाठ मंचन के नवाचारों से जोड़कर किया जाना चाहिए।** उनके **प्रयोगधर्मी संवाद, मंचीय प्रतीक, और दृश्य-रचना** आज के रंगकर्म को वैचारिक और तकनीकी रूप से समृद्ध कर सकते हैं। विशेषकर **'अरे! मायावी सरोवर'** जैसे नाटक, जो लिंग और सत्ता विमर्श को प्रतीकों और हास्य के माध्यम से उकेरते हैं, वर्तमान समाज की बहसों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ते हैं। रंगमंचीय संस्थानों को चाहिए कि वे शेष के कार्यों को **प्रयोगशालाओं, पाठ्यक्रमों और मंच प्रस्तुतियों में स्थान दें।** साथ ही, शोधकर्ताओं को उनके नाटकों की बहुस्तरीय संरचना को समकालीन आलोचनात्मक ढाँचों — जैसे **उत्तरआधुनिकता, लिंग विमर्श, और अस्तित्ववाद** — के संदर्भ में फिर से पढ़ना चाहिए। इससे केवल उनके लेखन की गहराई नहीं खुलेगी, साथ ही **समकालीन रंगमंच को भी एक वैचारिक विस्तार मिलेगा** जो आज की आवश्यकता बन चुका है। यही उनका नाट्य-कर्म **जीवित और गतिशील रखने का सर्वोत्तम मार्ग** हो सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[1] लवटे, सुनील कुमार. (2007). "*नाटककार शंकर शेष*". दिल्ली: प्रभा प्रकाशन.

[2] जाधव, प्रकाश. (1988). "*डॉ. शंकर शेष का नाट्य साहित्य*". दिल्ली: सन्मार्ग प्रकाशन.

[3] पांडे, दर्शन. (2013). "*समकालीन रंग चेतना और नाटककार शंकर शेष*". वाराणसी: साहित्य प्रकाशन.

[4] जाधव, सर्जेराव नारायणराव. (2023). "*डॉ. शंकर शेष का नाटक*". पुणे: सृजन प्रकाशन.

[5] अग्रवाल, रंजन वर्दे. (2007). "*एक और द्रोणाचार्य: शिक्षा व्यवस्था पर प्रतीकात्मक दृष्टि*". जयपुर: शैक्षणिक विमर्श प्रकाशन.

[6] कांगड़े, अजय कुमार. (2016). "*हिंदी साहित्य में नारी विमर्श*". पुणे: विद्या प्रकाशन.

[7] देवी, मीरा. (2023). "*जयशंकर प्रसाद एवं शंकर शेष के नाटकों में नारी*". इलाहाबाद: संस्कृति प्रकाशन.

[8] राठौड़, किरण. (2017). "*डॉ. शंकर शेष के नाटकों का रंगमंचीय अनुशीलन*". जयपुर: मंच चेतना प्रकाशन.

[9] कुकरेती, हेमंत. (2010). "*शंकर शेष: समग्र नाटक (अध्याय 1–3)*". दिल्ली: किताब घर प्रकाशन.

[10] संध्या, कृति. (2022). "*शंकर शेष और समकालीन चेतना*". दिल्ली: शोध गंगा प्रकाशन.

[11] तिवारी, दीपक. (2022). "*हिंदी नाटकों में प्रयोग विधियाँ*". लखनऊ: राज विश्व प्रकाशन.

[12] तिवारी, वेदप्रकाश. (2021). "*शंकर शेष के नाटक: भाषा और विचार का स्वरूप*". दिल्ली: वाणी संवाद प्रकाशन.

[13] बेल, सुनीता मंजुल. (1995). "*डॉ. शंकर शेष: व्यक्तित्व एवं कृतित्व*". दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस.

[14] गुप्ता, विवेक. (2020). "*हिंदी नाटक में स्त्री दृष्टि और पारिवारिक विवेचना*". दिल्ली: संवाद पब्लिशिंग हाउस.

[15] सक्सेना, नीलिमा. (2020). "*विकास और दृश्यांकन: भारत के नए समाज की छवि*". दिल्ली: प्रज्ञा बुक्स.

[16] कुमार, नवीन. (2023). "*समकालीन नाटक और पीढ़ियों की संवेदना*". दिल्ली: तन्वत्ता प्रकाशन.

[17] मिश्र, अर्चना. (2023). "*शब्द, मंच और समाज: शंकर शेष के नाटक*". दिल्ली: लोकप्रकाशन.